

देखते ही देखते क्या से क्या हो गया?

राजनीति में समय से बड़ा कोई खिलाड़ी नहीं होता। जो सत्ता कल तक अजेय दिखाई दे रही थी, वह अचानक सवालों के घेरें में आ गई है। पिछले एक-डेढ़ महीने की घटनाओं ने भारतीय राजनीति में ऐसा माहौल पैदा किया है। जिन मुद्दों और रणनीतियों के सहारे भारतीय जनता पार्टी और केंद्र की मोदी सरकार ने पिछले एक दशक से अधिक समय तक अपनी राजनीतिक बढ़त बनाए रखी, आज कई मामलों में मोदी सरकार और भाजपा के लिए चुनौती बन रहे हैं। संसद का मानसून सत्र लगातार टकराव का मंच बना हुआ है। पहले पेपर लोक, फिर धार्मिक संस्थानों से जुड़ी कथित अनियमितताएं, छत्र आंदोलनों पर पुलिस कार्रवाई और सरकार की जवाबदेही जैसे मुद्दों पर विपक्ष संगठित रूप से हमलावर है। विपक्ष का आरोप है, सरकार महत्वपूर्ण सवालों से बचती नजर आ रही है। जबकि सत्ता पक्ष का कहना है, कि विपक्ष व्यवधान पैदा कर रहा है। इस राजनीतिक रस्साकशी ने सदन की कार्यवाही को प्रभावित किया है। सत्ता की सबसे बड़ी ताकत उसका आत्म विश्वास और जनविश्वास होता है। जब छोटे-छोटे मुद्दे भी बड़े जनआंदोलन का रूप लेने लगे, तब यह संकेत होता है, जनता के भीतर फैले असंतोष को प्रशासनिक उपायों तथा ताकत के बल पर नहीं रोका जा सकता है। किसी आंदोलन को दबाने के लिए बल प्रयोग, पुलिस कार्रवाई या प्रशासनिक कठोरता का सहारा लिया जाता है। उसके बाद भी विरोध लगातार फैलता जा रहा है, तो यह सरकार के लिए चेतावनी माना जाता है। हाल के उपचुनावों ने मोदी सरकार और भाजपा को राजनीतिक संदेश दिया है। चुनावी जीत और हार लोकतंत्र का सामान्य हिस्सा हैं। जब हार उन क्षेत्रों में होने लगे जिन्हें पार्टी का मजबूत गढ़ माना जाता रहा हो। तब संगठन के भीतर भी आत्ममंथन शुरू हो जाता है। टिकट वितरण, स्थानीय नेतृत्व और कार्यकर्ताओं की नाराजगी जैसे प्रश्न खुलकर सामने आने लगते हैं। विपक्ष इन परिणामों को सत्ता के खिलाफ जनमत का संकेत बताते में जुटा है। विपक्ष ने आपदा में अवसर खोज लिया है। चंद चोरी और दिल्ली में पुलिस बर्बरता के बाद गुहमंत्रि अमित शाह के खिलाफ विपक्ष ने मोर्चा खोल दिया है। वर्तमान परिस्थितियों में विपक्ष डू और डाई की लड़ाई लड़ते हुए दिख रहा है। विपक्ष की रणनीति अब केवल संसद तक सीमित नहीं रही। सड़क से सदन तक एक साथ दबाव बनाने में विपक्ष सफल होता हुआ दिख रहा है। सरकार की ओर से सदन के नेता प्रधानमंत्री मोदी और वरिष्ठ नेतृत्व तेज में उपस्थित नहीं दिखाई देता है। इस कारण विपक्ष को राजनीतिक हमला सदन करने का अवसर मिल गया है। लोकतंत्र में केवल निर्णय लेना ही पर्याप्त नहीं होता, उन निर्णयों का प्रभावी बचाव करना और जनता के सामने पक्ष रखना भी उतना ही आवश्यक हो जाता है। राजनीति का पुराना सिद्धांत है, सत्ता के लिए सबसे बड़ा खतरा बाहरी विरोध नहीं, बल्कि आंतरिक असंतोष होता है। जब संगठन के भीतर टिकट, नेतृत्व और भविष्य को लेकर असमंजस बढ़ने लगे, तब विरोधी दलों को अतिरिक्त ताकत मिल जाती है। ऐसे समय में अनुशासन बनाए रखना और कार्यकर्ताओं का मनोबल ऊंचा रखना किसी भी दल के लिए सबसे बड़ी परीक्षा बन जाता है। हालांकि यह भी उतना ही सच है, भारतीय जनता पार्टी ने अतीत में कई कठिन राजनीतिक परिस्थितियों का मुकाबला किया है। इसलिए वर्तमान की घटनाओं के आधार पर अंतिम राजनीतिक निष्कर्ष पर पहुंचना जल्दबाजी होगी। लोकतंत्र में जनता का अंतिम फैसला चुनावी मैदान से सामने आता है। विपक्ष के लिए यह आवश्यक है, वह विरोध तक सीमित न रहे। जनता की समस्याओं को ही आंदोलन का रूप दे। वैकल्पिक आधार पर दृष्टि और ठोस नीति भी प्रस्तुत करे। इतना स्पष्ट है, देश की राजनीति तेजी से करगट ले रही है। सत्ता पक्ष के सामने कई ऐसी चुनौतियां सामने आई हैं, जिसका निराकरण आसानी से संभव नहीं है। सत्ता पक्ष के कमजोर होने से विपक्ष को नया उत्साह और ऊर्जा मिली है। जनता की अपेक्षाएं पहले से अधिक बढ़ गई हैं। आने वाले महीनों में यह तय होगा, जेन-जी, जेन-अल्फा, विपक्षी दलों और बिम्बिन आरोपों के चलते भाजपा इन चुनौतियों का मुकाबला कर पाती है या नहीं। विपक्ष इस राजनीतिक माहौल को स्थायी जनसमर्थन में परिवर्तित कर पाएगा?

सम्पादीय

महाराष्ट्र सरकार की सराहनीय पहल : उन्नत बचपन की पहली शर्त-स्वस्थ भोजन, स्वस्थ भविष्य

विकसित भारत का स्वप्न केवल आधुनिक इमारतों, तेज अर्थव्यवस्था, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल तकनीक और विश्वस्तरीय आधारभूत संरचनाओं से पूरा नहीं होगा। किसी भी राष्ट्र को वास्तविक शक्ति उसके बच्चे होते हैं। यदि बचपन स्वस्थ, संस्कारित, ऊर्जावान और मानसिक रूप से सुदृढ़ है, तो राष्ट्र का भविष्य स्वतः सुरक्षित हो जाता है। यदि बचपन ही अस्वस्थ, मोटापे, मधुमेह, कुपोषण और गलत खान-पान की आदतों से घिर जाए, तो विकास की पूरी अवधारणा खोखली सिद्ध होने लगती है। इसलिए बच्चों का स्वास्थ्य केवल स्वास्थ्य मंत्रालय का विषय नहीं, बल्कि राष्ट्रीय विकास, शिक्षा, अर्थव्यवस्था और सामाजिक उत्तरदायित्व का भी सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न है। महाराष्ट्र सरकार द्वारा राज्य के सभी स्कूलों और उनके आसपास जंक फूड की बिक्री, वितरण तथा प्रचार पर प्रतिबंध लगाने का निर्णय इसी व्यापक दृष्टि का परिचायक है। यह केवल एक प्रशासनिक आदेश नहीं, बल्कि भविष्य की पीढ़ियों के प्रति उत्तरदायित्व का गंभीर संदेश है। यह स्वीकार करने का साहसिक प्रयास है कि बच्चों की सेहत बाजार के मुनाफे से कहीं अधिक मूल्यवान है। यदि यह निर्णय प्रभावी ढंग से लागू होता है तो यह पूरे देश के लिए एक आदर्श मॉडल बन सकता है।

आज सबसे बड़ी चिंता यह नहीं है कि बच्चे मोटापे का कम खा रहे हैं, बल्कि यह है कि वे पोषण कम और प्रसंस्कृत खाद्य पदार्थ अधिक खा रहे हैं। रंग-बिरंगे पैकेट, आकर्षक विज्ञापन, कार्टून पात्रों की ब्रांडिंग, सोशल मीडिया का प्रभाव और हर गली-मोहल्ले में उपलब्ध फास्ट फूड ने बच्चों की स्वादेन्द्रियों पर ऐसा कब्जा कर लिया है कि घर का पौष्टिक भोजन उन्हें

फीका लगने लगा है। यह परिवर्तन केवल खान-पान की आदत का बदलाव नहीं है, बल्कि धीरे-धीरे उनके शरीर, मस्तिष्क और व्यवहार को भी प्रभावित कर रहा है। वैज्ञानिक शोध लगातार यह बताते रहे हैं कि अधिक वसा, अधिक नमक और अधिक चीनी वाले खाद्य पदार्थ बच्चों में मोटापा, उच्च रक्तचाप, मधुमेह, हृदय रोग, हार्मोन असंतुलन तथा मानसिक एकाग्रता में कमी जैसी अनेक समस्याओं का कारण बन रहे हैं। सबसे चिंताजनक तथ्य यह है कि जो बीमारियां पहले चालीस-पचास वर्ष की आयु में दिखाई देती थीं, वे अब किशोरावस्था और बचपन में ही दस्तक देने लगी हैं। यह केवल स्वास्थ्य संकट नहीं, बल्कि आने वाले समय में देश की उत्पादक क्षमता और मानव संसाधन पर भी गहरा प्रभाव डालने वाला संकट है।

बचपन की सबसे बड़ी आवश्यकता स्वाद नहीं, पोषण है। शरीर के विकास के साथ-साथ मस्तिष्क का तीव्र विकास भी बचपन में ही होता है। यदि इस अवस्था में बच्चों को संतुलित भोजन, ताजे फल, हरी सब्जियां, दूध, दालें, मोटे अनाज और प्राकृतिक खाद्य पदार्थ पर्याप्त मात्रा में मिलें, तो उनका शारीरिक और मानसिक विकास कहीं अधिक प्रभावी होता है। इसके विपरीत जंक फूड क्षणिक स्वाद तो देता है, लेकिन शरीर को आवश्यक पोषक तत्व नहीं देता। परिणामस्वरूप बच्चा बाहर से स्वस्थ दिखाई देता है, किंतु भीतर से अनेक पोषण संबंधी कमियां का शिकार बनने लगता है। दुर्भाग्य यह है कि जंक फूड आज केवल भोजन नहीं रहा, बल्कि एक आक्रामक व्यावसायिक संस्कृति बन चुका है। विज्ञापनों के माध्यम से बच्चों के मन में यह धारणा बैठ दी गई है कि

उप-चुनाव, बड़ा संकेत-भाजपा का अति आत्म विश्वास या बदलती तस्वीर

तीन अगस्त को तीन राज्यों के तीन नतीजे बहुत बड़े संकेत हैं। निश्चित रूप से बिहार का नतीजा जहाँ सत्ताधारी दल के लिए हैरान और परेशान करने वाला रहा। वहीं मध्यप्रदेश का नतीजा सत्ताधारी दल की अन्दरूनी गुटबाजी का परिणाम रहा। गुजरात में भाजपा की जीत स्वाभाविक कही जा सकती है। सबसे चर्चित जीत रही प्रशान्त किशोर उर्फ पीके की, क्योंकि राज्य की जनता को विकल्प के तौर पर एक नया दल जनसुराज जो मिल गया। पहले बिहार वासियों के पास दो ही विकल्प थे। राजद और भाजपा। राजद से मोहभंग हो गया था और पीके मतदाताओं के बीच अपनी जगह बनाने की कवायद कर रहे थे। हालांकि बीते विधानसभा चुनाव में उनका एक भी प्रत्याशी नहीं जीता था वो खुद चुनाव में खड़े नहीं हुए। लेकिन बिहार की नज्ब को टटोलते रहे। इसी बीच नितिन नबीन के भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष बनने के बाद उनकी बांकीपुर सीट खाली हुई जो पीके लिए मौके पर चौका लगाने जैसा रहा। हाँ, उन्होंने छक्का जक्क जड़ दिया ये बात अलग है। बांकीपुर सीट पटना के शहरी इलाके की है जिसे शुरू से ही भाजपा का मजबूत गढ़ माना जाता रहा। इस नतीजे ने न केवल यह मिथक तोड़ा बल्कि भाजपा में खलबली मचा दी। माना जा रहा है कि पेपर लोक और परीक्षाओं में धांधलियों के चलते युवाओं की नाराजगी और जंतर-मंतर पर चले लंबे आन्दोलन ने भी भाजपा की छवि पर डेंट लगाया। इधर भाजपा अति आत्मविश्वास में थी और यह समझने में नाकाम रही कि हवा हमेशा एक ही दिशा में नहीं बहती। चंद चोरी और जेन-जी आन्दोलन के बीच भाजपा ने अपने 40 स्टार प्रचारक उतार दिए। लेकिन राजद के चार सांसद तक बांकीपुर नहीं पहुंचे। इतना ही नहीं नेता प्रतिपक्ष तेजस्वी यादव तो विदेश चले गए जिन्होंने आखीर-आखीर में रोड शो किया। लेकिन तब तक बांकीपुर के मतदाताओं को यह समझना आसान हो गया कि तेजस्वी यादव और राजद अपने उम्मीदवार को लेकर गंभीर नहीं है। संकेत साफ रहा मतदाता को कहीं और शिफ्ट होना था। विकल्प के तौर पर पढ़ा लिखा, राजनीति को समझने-जानने वाले रणनीतिकार के रूप में पीके का नाम था इसलिए ज्यादा सोचने-समझने के बजाए बिहार और देश के हालातों को देखते हुए मतदाताओं ने इस छोटे से चुनाव में बड़ा संदेश दे दिया। भाजपा को नुकसान पहुंचाने में भरत तिवारी एनकाउंटर मामला भी माना जा रहा है। इस एनकाउंटर ने न केवल युवाओं बल्कि खुल कर भाजपा के सर्वर्ण विरोधी होने को जबरदस्त हवा दी। भाजपा के तमाम जिम्मेदारों और रणनीतिकारों ने भाजपा विरोधी माहौल को थामने और बदलने की कोशिश की पर यह हो न सका। अंततः जीत भाजपा के हाथ से निकल गई और कई दशकों से भाजपा की परंपरागत कहलाने वाली बांकीपुर और राटयी अध्यक्ष नितिन नबीन के कारण अतिप्रतिष्ठत हुई सीट हाथ से निकल गई। अब बिहार की राजनीति को समझने वाले यह कह रहे हैं कि पीके भाजपा सरकार, विशेषकर सम्राट चौधरी के लिए सदन के अन्दर भी और बाहर भी मुश्किलें बढ़ाएंगे क्योंकि व उनका मकसद सिर्फ विधायकी नहीं बल्कि अपनी पार्टी को बिहार में नया मुकाम जो देना है। कमोवेश यही स्थिति मध्यप्रदेश के दतिया में रही। 2023 में हुए विधानसभा चुनाव में दतिया से नरोत्तम मिश्रा की हार के बाद भाजपा के अन्दरूनी हलकों में कहीं खुशी, कहीं गम का माहौल था। लेकिन वहां से चुने गए कांग्रेस विधायक राजेंद्र भारती को बैंक धोखाधड़ी मामले में दोषी ठहराए जाने और सजा हो जाने के बाद अप्रैल में अयोग्य घोषित कर दिए जाने से हुए उपचुनाव में घनश्याम सिंह ने कांग्रेस से चुनाव लड़कर सीट को बरकरार रखा। लेकिन इसमें सबसे ज्यादा बिना चुनाव लड़े मुश्किल नरोत्तम मिश्रा की हुई। जिन्होंने चुनाव से काफी पहले ही प्रचार और जनसंपर्क बढ़ा दिया था। लेकिन ऐन वक्त पर उन्हें टिकट नहीं मिली। जिस कारण यह सीट बहुत ही बड़ी प्रतिष्ठता का कारण बन गई। नरोत्तम मिश्रा की स्थिति न उल पाने, न गिगल पाने जैसी हो गई। यदि यहाँ से भाजपा जीतती तो उनका राजनीतिक कद घटता और अब कांग्रेस जीत गई है तो भी उनके राजनीतिक भविष्य पर सवाल उठ रहे हैं। निश्चित रूप से नरोत्तम मिश्रा का कद देखते हुए उनकी मंशा और उनके समर्थक इस मतदान के दौरान किस निर्णय पर पहुंचते होंगे, कहने की जरूरत नहीं।

बिहार में पीके का पॉवर प्ले हिट, दतिया में बीजेपी पर भारी पड़ी कांग्रेस

राजनीति में समय का पहिया कब घूम जाए, कोई नहीं कह सकता। कुछ महीनों पहले ही बिहार विधानसभा चुनाव में प्रशांत किशोर की जन सुराज पार्टी का खाता तक नहीं खुला था। अधिकांश प्रत्याशियों की जमानत जब्त हो गई थी और आलोचकों ने मान लिया था कि पद के पीछे से रणनीति बनाने वाले पीके जमीन पर फेल हो गए हैं। लेकिन बांकीपुर विधानसभा उपचुनाव के नतीजों ने एक ही झटके में पूरी कहानी बदल दी। प्रशांत किशोर ने किसी सुरक्षित सीट से चुनाव लड़ने के बजाय सीधे दुनिया की सबसे बड़ी पार्टी भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष नितिन नबीन के गढ़ में सेंध लगा दी। बांकीपुर सीट पर पिछले तीन दशकों से भाजपा का एकछत्र राज था, जिसे ढहाकर प्रशांत किशोर ने 19 हजार वोट से ज्यादा वोटों से ऐतिहासिक जीत दर्ज की है। इस इकलौती जीत ने बिहार की राजनीति में एक बिल्कुल नया अध्याय शुरू कर दिया है। पीके की इस जीत पर अब पुरानी

सियासी कड़वाहट भी पिघलती दिख रही है। राष्ट्रीय जनता दल प्रमुख लालू प्रसाद यादव के बड़े बेटे तेज प्रताप यादव और बेटी रोहिणी आचार्य ने खुले दिल से प्रशांत किशोर को इस शानदार जीत की शुभकामनाएं दी हैं। इस कदम ने बिहार की राजनीति में नए समीकरणों की चर्चा छेड़ दी है। राजनीतिक गलियारों में एक बड़ा तबका हमेशा यह नैरेटिव चलाता रहा है कि प्रशांत किशोर पद के पीछे से भाजपा के लिए काम करते हैं और वे भाजपा की बी-टीम हैं। आलोचक कहते थे कि पीके केवल विपक्षी वोटों को काटने के लिए मैदान में उतरें हैं। लेकिन बांकीपुर के नतीजों ने इन सभी कयासों को पूरी तरह ध्वस्त कर दिया।

भाजपा के सबसे मजबूत और पारंपरिक गढ़ को सीधे चुनौती देकर ध्वस्त करना यह साबित करता है कि पीके किसी की कठपुतली नहीं हैं। लोकतंत्र में जनता बहुत समझदार होती है; वह अफवाहों पर नहीं, बल्कि धरातल पर दिख रहे

प्रयासों पर मुहर लगाती है। यह जीत साफ संदेश देती है कि जब जनता पारंपरिक चेहरों से ऊब जाती है, तो वह नए और तार्किक विकल्प को सिर-आंखों पर बिठाने में देर नहीं करती। प्रशांत किशोर का विधानसभा में पहुंचना केवल जन सुराज के लिए एक सीट का फायदा नहीं है, बल्कि सदन के भीतर एक बेहद धारदार और सशक्त विपक्ष की एंट्री है। पीके की राजनीति पारंपरिक नेताओं जैसी नहीं है; वे जब बोलते हैं तो उनके पास आंकड़ों का पुर्लिंद और जमीनी तथ्यों का मजबूत ढाल होती है। ऐसे में मुख्यमंत्री सम्राट चौधरी के लिए सरकार चलाना और सदन में अपनी नीतियों का बचाव करना अब पहले जैसा आसान नहीं रहने वाला है। इसके साथ ही, विपक्ष के प्रमुख चेहरे तेजस्वी यादव के लिए भी यह एक नई चुनौती होगी। नेता प्रतिकल्प के तौर पर विपक्षी अब तक विपक्ष की इकलौती बड़ी आवाज थे, लेकिन अब सदन के भीतर प्रशांत किशोर अपनी तार्किक और आक्रामक

शैली से एक बड़ा स्पेस तैयार करेंगे, जिससे सूबे की राजनीति का त्रिकोणीय होना तय है।

बिहार के इस सियासी भूचाल के बीच, मध्य प्रदेश से आई खबर भी भाजपा के लिए किसी बड़े झटके से कम नहीं है। दतिया विधानसभा उपचुनाव में भाजपा ने अपनी पूरी सरकारी ताकत झोंक दी थी। मुख्यमंत्री से लेकर पूरी कैबिनेट जमीन पर उतरी हुई थी, लेकिन जनता ने कांग्रेस के घनश्याम सिंह पर भरोसा जताते हुए उन्हें छह हजार से अधिक वोटों से विजयी बना दिया। दतिया की इस जीत ने ठंडे पड़े कांग्रेस कार्यकर्ताओं में नए पंख लगा दिए हैं और उनके भीतर एक नया जोश भर दिया है। इस चुनाव में भाजपा के कद्दावर नेता और पूर्व गृह मंत्री नरोत्तम मिश्रा का पक्ष बेहद दिलचस्प रहा। टिकट कटने के बावजूद उन्होंने पार्टी के फैसले को स्वीकार किया और चुनाव प्रचार में भी जुटे रहे। हालांकि, चुनावी नतीजों के बाद दतिया की अंदरूनी कलह खुलकर सामने आ गई। खुद

नरोत्तम मिश्रा के पोलिंग बूथ नंबर 121 पर भाजपा को हार का सामना करना पड़ा। हार के बाद जहां नरोत्तम मिश्रा के बंगले पर सननाट दिख रहा है, वहीं दूसरी तरफ भाजपा प्रत्याशी आशुतोष तिवारी ने हार का ठीकरा सीधे भीतरघातियों पर फोड़ा। उन्होंने कहा कि जो लोग भाजपा को अपनी मां कहते हैं और फिर पीठ में छुरा घोंपते हैं, उन्हें अपने कृत्य पर सोचना चाहिए। इस बयान ने साफ कर दिया कि भाजपा के भीतर आंतरिक गुटबाजी ने ही पार्टी की लुटिया डुबो दी।

दतिया की इस ऐतिहासिक जीत के सबसे बड़े नायक बनकर उभरे हैं एमपी कांग्रेस के अध्यक्ष जीतू पटवारी। विपरीत परिस्थितियों में भी सूझबूझ और आक्रामक चुनाव प्रबंधन के दम पर उन्होंने भाजपा के इस मजबूत किले को ध्वस्त कर दिया, जिससे राज्य की राजनीति में उनकी लोकप्रियता का ग्राफ अचानक बहुत ऊपर चला गया है। दूसरी तरफ, मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री

होने के बावजूद मोहन यादव इस चुनाव में कोई विशेष प्रभाव नहीं छोड़ पाए। पूरी सत्ता और मशीनरी का साथ होने के बाद भी दतिया को न बचा पाना मुख्यमंत्री की नेतृत्व क्षमता और जमीनी पकड़ पर गंभीर सवाल खड़े करता है। हालांकि उन्होंने यह कहकर हार को संभालने की कोशिश की कि कांग्रेस की सीट कांग्रेस के पास ही रही है, लेकिन अंदरूनी तौर पर यह पराजय उनकी साख को कमजोर करती है। बिहार से लेकर मध्य प्रदेश तक के ये चुनावी नतीजे साफ इशारा कर रहे हैं कि जनता अब केवल बड़े नामों या सत्ता के रसूरख को देखकर वोट नहीं दे रही । लोकतंत्र में मतदाता अब जागरूक हो चुका है; वह जमीन पर ठोस विकल्प, आंतरिक गुटबाजी से परे मजबूत नेतृत्व और अपनी बुनियादी जरूरतों की बात करने वाले नेताओं को चुन रहा है। चाहे वे प्रशांत किशोर हों या जीतू पटवारी, आने वाला वक्त इन नए सियासी चेहरों के इर्द-गिर्द घूमने वाला है।

रणनीति बनाएं तो परिणाम कहीं अधिक प्रभावी होगा। आज समय की मांग है कि जंक फूड के विरुद्ध संघर्ष को केवल प्रतिबंध तक सीमित न रखा जाए, बल्कि इसे स्वस्थ जीवनशैली के राष्ट्रीय अभियान का स्वरूप दिया जाए। जिस प्रकार स्वच्छ भारत अभियान ने स्वच्छता को जन-आंदोलन बनाया, उसी प्रकार स्वस्थ भोजन और पोषण को भी राष्ट्रीय जन-जागरण का विषय बनाया जाना चाहिए। बच्चों को यह समझाना होगा कि वास्तविक ऊर्जा किसी पैकेट में नहीं, बल्कि प्रकृति के निकट रहने वाले भोजन में छिपी है।

महाराष्ट्र सरकार का निर्णय इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि उसने यह स्वीकार किया है कि बच्चों का स्वास्थ्य किसी भी राजनीतिक या आर्थिक हित से बड़ा है। अब आवश्यकता इस बात की है कि देश के सभी राज्य इस दिशा में समान साहस और दूरदर्शिता दिखाएं। विकसित भारत की आधारशिला स्मार्ट शहर नहीं, बल्कि स्वस्थ बच्चे हैं। यदि बचपन सुरक्षित रहेगा तो भविष्य सुरक्षित रहेगा। यदि बच्चों की थाली पौष्टिक होगी तो राष्ट्र की प्रगति भी संतुलित होगी। आने वाले भारत की पहचान केवल तकनीकी शक्ति से नहीं, बल्कि स्वस्थ, सशक्त, अनुशासित और जागरूक नई पीढ़ी से होगी। इसलिए आज का सबसे बड़ा राष्ट्रीय संकल्प यही होना चाहिए कि हर बच्चे को ऐसा वातावरण मिले, जहाँ स्वाद से पहले स्वास्थ्य, सुविधा से पहले पोषण और तात्कालिक आकर्षण से पहले दीर्घकालिक जीवन-सुरक्षा को महत्व दिया जाए। यही उन्नत बचपन का मार्ग है और यही विकसित भारत की सबसे मजबूत नींव।

संसद,कानून और लोकतंत्र: मानसून सत्र 2026 के अंतिम चरण में विधायी जवाबदेही की चुनौती

लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति केवल बहुमत में नहीं, बल्कि बहस,संवाद,विपक्ष की भागीदारी, विधेयकों की गहन जांच,मतदान की पारदर्शिता और जनता के प्रति जवाबदेही में निहित होती है।

वैश्विक स्तर पर भारत विश्व का सबसे बड़ा लोकतंत्र है और भारतीय संसद उसकी लोकतांत्रिक आत्मा का सर्वोच्च संस्थागत मंच है। संसद केवल कानून बनाने की इमारत नहीं,बल्कि जनता की आशाओं, समस्याओं असहमतियों और अपेक्षाओं को राष्ट्रीय नीति में बदलने वाली संवैधानिक व्यवस्था है। संसद में सरकार बहुमत के आधार पर शासन करती है,किंतु लोकतंत्र की वास्तविक शक्ति केवल बहुमत में नहीं,बल्कि बहससंवाद विपक्ष की भागीदारी,विधेयकों की गहन जांच,मतदान की पारदर्शिता और जनता के प्रति जवाबदेही में निहित होती है,इसलिए मैं एडवोकेट किशन सनमुखादास भावनानी गोदि्या महाराष्ट्र यह मानता हूं क्री कि संसद का मूल्य केवल इस बात से नहीं आंका जाना चाहिए कि कितने विधेयक पारित हुए,बल्कि इस बात से भी आंका जाना

चाहिए कि वे कितनी चर्चा,कितनी जांच और कितनी लोकतांत्रिक भागीदारी के बाद पारित हुए। वर्ष 2026 के मानसून सत्र के अंतिम चरण में पेपर लोक और छत्रों से जुड़े मुद्दे ने संसद के भीतर एक गंभीर राजनीतिक और लोकतांत्रिक प्रश्न खड़ा किया। विपक्ष ने परीक्षा अनियमितताओं,छत्र आंदोलनों और कथित पुलिस कार्रवाई के मुद्दे पर सरकार से जवाब मांगा।इसके बाद विपक्षी दलों ने विरोध दर्ज कराया और कुछ अवसरों पर मतदान की प्रक्रिया का बहिष्कार किया। इसी राजनीतिक तनाव के बीच सार्वजनिक परीक्षा (अनुचित साधनों की रोकथाम) संशोधन विधेयक,2026 संबंधी संशोधन विधेयक, 2026 लोकसभा में ध्वनि मत से पारित हुआ। तथा इसपर राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू ने 31 जुलाई 2026 को अपनी स्वीकृति (मंजूरी) दे दी है, और कानून मंत्रालय द्वारा इसी दिन इसकी राजपत्र (गजट) अधिपूचना जारी कर दी गई है और यह अब कानून लागू हो चुका है। साथियों उपलब्ध रिपोर्टों के अनुसार विधेयक पर बहस हुई, लेकिन सदन में तीखी नोकझोंक

और व्यवधान के बीच अंतिम स्वीकृति ध्वनि मत से दी गई।बता दे कि संसद के मानसून सत्र 2026 में 31 जुलाई तक कम-से- कम 3 प्रमुख विधेयक (1) लोक परीक्षाएं (अनुचित साधनों की रोकथाम),संशोधन विधेयक,2026 (2) राष्ट्रीय सम्मान के अपमान की रोकथाम (संशोधन) विधेयक, 2026 दोनों सदनों से पारित ध्वनि मत (3) जन्म और मृत्यु पंजीकरण (संशोधन) विधेयक, 2026,याने तीनों विधेयक ध्वनि मत से पारित किए गए; इस अवधि में किसी विधेयक पर औपचारिक विभाजन (रिक्ॉर्डेड वोटिंग) का स्पष्ट मामला सामने नहीं आया। यह घटनाक्रम केवल एक विधेयक के पारित होने का प्रश्न नहीं है। इसके माध्यम से एक बड़ा लोकतांत्रिक प्रश्न सामने आता है, जब किसी कानून का संबंध लाखों विद्यार्थियों के भविष्य, परीक्षा की विश्वसनीयता और युवाओं के विश्वास से हो, तब क्या केवल ध्वनि मत पर्याप्त लोकतांत्रिक संतुष्टि प्रदान करता है? और यदि विपक्ष मतदान का बहिष्कार करता है,तो क्या सरकार की जिम्मेदारी केवल बहुमत के आधार पर

कानून पारित करना है,या उसे व्यापक राजनीतिक सहमति और सार्वजनिक विश्वास भी सुनिश्चित करना चाहिए? पेपर लोक केवल परीक्षा की गड़बड़ी नहीं,युवाओं के भविष्य और लोकतांत्रिक विश्वास का प्रश्न।

साथियों, सरकार का पक्ष यह रहा कि पेपर लोक जैसी गतिविधियों को रोकने के लिए कठोर कानून और त्वरित न्यायिक व्यवस्था आवश्यक है।यह तर्क अपने आप में महत्वपूर्ण है,क्योंकि संगठित परीक्षा अनपराधों पर प्रभावी दंड, जांच और समयबद्ध सुनवाई की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता।लेकिन लोकतंत्र में कानून की कठोरता के साथ उसकी विश्वसनीयता भी आवश्यक होती है। यदि कानून बनाने की प्रक्रिया में व्यापक चर्चा, संशोधनों पर विचार और विपक्ष की भागीदारी कम दिखाई दे, तो कानून की वैधानिकता तो बनी रहती है, किंतु उसके प्रति राजनीतिक और सामाजिक स्वीकार्यता का प्रश्न उठ सकता है।

साथियों बात अगर हम विपक्ष का विरोध और मतदान का बहिष्कार: लोकतांत्रिक अधिकार या

संसदीय प्रक्रिया की कमजोरी? इसको समझने की करें तो लोकतंत्र में विपक्ष का कार्य केवल सरकार की आलोचना करना नहीं है। विपक्ष जनता के उन वर्गों की आवाज भी है जिनकी अपेक्षाएं, शिकायतें या असहमति सरकार की प्राथमिकताओं से अलग हो सकती हैं। संसद में विपक्ष का विरोध, नारेबाजी, बहिर्गमन या मतदान का बहिष्कार राजनीतिक असहमति व्यक्त करने के संसदीय साधन हो सकते हैं। लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि लगातार व्यवधान और मतदान से दूरी विपक्ष की विधायी भूमिका को कमजोर कर सकती है।पेपर लोक के मुद्दे पर विपक्ष ने यह तर्क रखा कि पहले छात्रों के प्रश्नों, आंदोलन और कथित प्रशासनिक कार्रवाई पर स्पष्ट चर्चा होनी चाहिए। यदि विपक्ष को लगता है कि उसके मुद्दों को पर्याप्त समय नहीं दिया गया, तो विरोध उसकी राजनीतिक रणनीति बन सकता है। दूसरी ओर, यदि विपक्ष मतदान का बहिष्कार करता है, तो वह विधेयक की धाराओं में संशोधन प्रस्तावित करने, सरकार से स्पष्टीकरण मांगने और रिक्ॉर्डेड वोट के माध्यम से अपनी स्थिति दर्ज

करने का अवसर भी सीमित कर देता है।इसलिए लोकतांत्रिक जिम्मेदारी दोनों पक्षों की है। सरकार को विपक्ष की बात सुनने और महत्वपूर्ण जनहित के मुद्दों पर पर्याप्त चर्चा सुनिश्चित करनी चाहिए, जबकि विपक्ष को भी विरोध के साथ विधायी प्रक्रिया में सक्रिय भागीदारी करनी चाहिए। लोकतंत्र में केवल विरोध करना पर्याप्त नहीं; वैकल्पिक सुझाव देना, संशोधन प्रस्तुत करना और मतदान में अपनी स्थिति सटीकता से दर्ज कराना भी आवश्यक है।

साथियों बात अगर हम ध्वनि मत क्या है और इसकी संवैधानिक- संसदीय स्थिति क्या है? इसको समझने की करें तो ध्वनि मत भारतीय संसद की एक मान्य और लंबे समय से प्रचलित संसदीय प्रक्रिया है। इसमें अध्यक्ष या सभापति सदन से पूछते हैं कि प्रस्ताव के पक्ष में कौन है और विरोध में कौन है। सदस्य ‘हाँ’ या ‘नहीं’ कहकर अपनी राय व्यक्त करते हैं। अध्यक्ष ध्वनि की तीव्रता के आधार पर निर्णय देते हैं कि प्रस्ताव स्वीकार हुआ या अस्वीकार।

